स्वभाव सामर्थ्य से इन्कार मत कर !

अहो ! इस सम्यग्दृष्टि जीव की भावना तो देखो वह स्वभाव से ही प्रारंभ करता है और स्वभाव में ही लाकर पूर्ण करता है। उसने जहाँ से प्रारंभ किया था वहीं ला रखा है। आत्मा में स्वाश्रय से साधकदशा प्रारंभ की है और पूर्णता भी स्वाश्रय से आत्मा में ही होती है। केवलज्ञान सम्पूर्णतया निज में ही समाविष्ट हो जाता है। साधक धर्मात्मा अपने में ही समाविष्ट होना चाहता है। उसने बाहर से न तो कहीं में से प्रारंभ किया है और न बाह्य में कहीं रुकनेवाला है। आत्मा का मार्ग आत्मा में से निकलकर आत्मा में ही समाविष्ट हो जाता है।

यहाँ मात्र जीव की ही बात नहीं है; किन्तु सभी पदार्थों की अवस्था क्रमबद्ध होती है। यहाँ मुख्यतया जीव की बात समझाई है, आत्मा की अवस्था आत्मा में ही क्रमबद्ध प्रगट होती है, वह निश्चय करने में अनन्त वीर्य है। वह निश्चय करने पर पहले अनन्त पदार्थों को अच्छा-बुरा मानकर जो राग-द्वेष होता था, वह सब दूर हो गया, पर निमित्त का स्वामित्व मानकर जो वीर्य पर में रुक जाता था वह अब अपने आत्मस्वभाव को देखने में लग गया है, राग-निमित्त वगैरह की ओर से दृष्टि गई और स्वभाव में दृष्टि हो गई। स्वभावदृष्टि में अपनी पर्याय की स्वाधीनता की कैसी प्रतीति होती है, तत्संबंधी यह बात है। स्वभावदृष्टि को समझे बिना व्रत, तप, भक्ति, दान और पठन-पाठन यह सब बिना इकाई के शून्य के समान व्यर्थ है। मिथ्यादृष्टि जीव के यह कुछ सच्चे नहीं होते।

हे जीव ! तेरी वस्तु में भगवान जितनी ही परिपूर्ण शक्ति है, भगवानपना वस्तु में ही प्रगट होता है। यदि ऐसे अवसर पर यथार्थ वस्तु को दृष्टि में न लें तो वस्तु के स्वरूप को जाने बिना जन्म-मरण का अन्त नहीं हो सकता। वस्तु के जानने पर अनन्त संसार दूर हो जाता है। वस्तु में संसार नहीं है, वस्तु की प्रतीति होने पर मोक्षपर्याय की तैयारी की प्रतिध्वनि होने लगती है। भगवन् ! यह तेरे स्वभाव की बात है, एकबार हाँ तो कह ! तेरे स्वभाव की स्वीकृति में से स्वभावदशा की अस्ति आयेगी; स्वभाव सामर्थ्य से इन्कार मत कर। सब प्रकार से अवसर आ चुका है, अपने द्रव्य में दृष्टि करके देख, उस द्रव्य की प्रतीति के बल से मोक्षदशा प्रकट हो जाती है।

ह्न ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव, पृष्ठ-256-257

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 21 242 अंक : 3

द्रव्यसंग्रह पद्यानुवाद

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

मोक्षमार्ग अधिकार

अर्थग्राहक निर्विकल्पक और है अविशेष जो।
सामान्य अवलोकन करे जो उसे दर्शन जानना।।43।।
जिनवर कहें छद्मस्थ के हो ज्ञान दर्शनपूर्वक।
पर केवली के साथ हों दोनों सदा यह जानिये।।44।।
अशुभ से विनिवृत्त हो व्रत समितिगुप्तिरूप में।
शुभभावमय हो प्रवृत्ती व्यवहार चारित्र जिन कहें।।45।।
बाह्य अंतर क्रिया के अवरोध से जो भाव हों।
संसारनाशक भाव वे परमार्थ चारित्र जानिये।।46।।
अरे दोनों मुक्तिमग बस ध्यान में ही प्राप्त हो।
इसलिए चित्तप्रसन्न से नित करो ध्यानाभ्यास तुम।।47।।
यदि कामना है निर्विकल्पक ध्यान में हो चित्त थिर।
तो मोह-राग-द्वेष इष्टानिष्ट में तुम ना करो।।48।।
परमेष्ठीवाचक एक दो छह चार सोलह पाँच अर।
पैंतीस अक्षर जपो नित अर अन्य गुरु उपदेश से।।49।।
नाशकर चऊ घाति दर्शन ज्ञान सुख अर वीर्यमय।
शुभदेहथित अरिहंत जिन का नित्यप्रति चिन्तन करो।।50।।
लोकाग्रथित निर्देह लोकालोक ज्ञायक आतमा।
अठकर्मनाशक सिद्धप्रभु का ध्यान तुम नित ही करो।।51।।

आत्मा योगियों द्वारा जाना गया है

पूज्यपाद आचार्य देवनन्दिस्वामी के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश के 21 वें श्लोक पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल श्लोक इसप्रकार है –

स्वसंवेदनसुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्यय:।
अत्यन्तसौख्यवानात्मा, लोकालोकविलोकन: ।।21।।

आत्मा लोक और अलोक को देखने-जाननेवाला, अत्यन्त अनन्तसुख स्वभाववाला, शरीरप्रमाण, नित्य है तथा स्वसंवेदन से योगिजनों द्वारा अच्छीतरह अनुभव में आया हुआ है।

(गतांक से आगे)

यहाँ तो ऐसा कहते हैं आत्मा कि केवल पर को ही ज्ञेय नहीं बनाता; किन्तु स्वयं ही स्वयं को ज्ञेय बनाकर स्वयं ही ज्ञाता होकर अंतर स्वभाव में समा जाता है। स्वभाव को पहिचानकर स्वभाव में ही ठहर जाता है। हीरे को जाने बगैर, उसका बखान करना खोटा है; परन्तु जानकर बखान करे, वही सच्चा है; वैसे ही आचार्यदेव चैतन्य हीरे को जानकर प्रमाणज्ञान से सिद्ध करके उसका गुणगान करते हैं। लोकालोक एक महासत्ता है, उसका लक्ष्य किये बिना ज्ञान स्वयं की सत्ता की सामर्थ्य से लोकालोक को एक समय में जान लेता है – ऐसी ही कोई उसकी अचिंत्य सामर्थ्य है।

परद्रव्य के अथवा परभाव के सहारे बिना आत्मा स्वत: स्वभाव से प्रमाणसिद्ध है। वह स्वभाव ज्ञान में अप्रगट नहीं रहता, प्रगट ही रहता है। अनुभवप्रकाश में ऐसा आता है कि पिता बाजार गया हुआ था, पुत्र घर में था और बाजार में पिता से किसी ने पूँछा कि तुम्हारा पुत्र है क्या? तो पिता हाँ कहता है। फिर वह पूँछता है क्यों भाई ! तुम्हारे साथ कहाँ है ? पिता कहता है साथ नहीं; किन्तु है न ! यहाँ होने अथवा न होने से क्या ? वैसे ही भगवान आत्मा अखण्डानन्द एक समय में लोक-अलोक को जानने के स्वभाववाला तत्त्व है। धर्मी जीव स्वयं के ही प्रमाण ज्ञान से आत्मा के स्वरूप को

स्वीकार करता है, भगवान कहते हैं; इसलिए नहीं। स्वयं के प्रमाण से ही स्वयं का स्वरूप सिद्ध होता है, वहाँ दूसरे के प्रमाण की जरूरत नहीं। स्वयं से ही स्वयं का ज्ञान हो, वही स्वसंवेदन है। उसे स्वसंवेदन कहो, अनुभव कहो, सम्यग्दर्शन कहो या जो कहो एक ही है।

जिसका जो स्व-रूप है, स्वभाव है, सत्त्व है, उसको दूसरे के प्रमाण से मानने की क्या जरूरत ? स्वयं से ही स्वरूप सिद्ध है। स्वयं ही स्वयं के द्वारा जानने लायक है और जीव स्वयं ही स्वयं को ज्ञेय बनाने लायक है। उससे स्वयं ही स्वयं को ज्ञेय बनाकर ज्ञातापने जान सकता है। यह तुम्हारा स्वयं का स्वभाव है। विकल्प के काल में आत्मा को विकल्प का ज्ञान होता है ; परन्तु वह विकल्प के कारण नहीं, विकल्प के सहारे से नहीं; किन्तु स्वयं के ज्ञायक स्वभाव से ज्ञान होता है।

जीवों को अभी स्वयं के स्वभाव का माहात्म्य ही नहीं आया है। भाषा में आत्मा की महिमा करता है; परन्तु अंतर से आत्मा की महिमा नहीं आती। परन्तु भाई ! जबतक तू हृदय में आत्मा को स्थापित नहीं करेगा, तबतक आत्मा हाथ में आनेवाला नहीं है। अनुभव प्रकाश में कहा है कि जबतक तू संयोग में, राग में, पुण्य में, पाप में, निमित्त में या व्यवहार में प्रभुता मानेगा, उससे अपने को बड़ा मानेगा, तबतक आत्मा हाथ में नहीं आयेगा; इसलिए अंतर में अपनी प्रभुता को स्वीकार कर ! मैं ही परमेश्वर हूँ, पहले ऐसा नक्की कर ! विश्वास ला !

जो वस्तु है, उसके स्वभाव की सीमा नहीं होती, मर्यादा नहीं होती, उसको पराश्रय की आवश्यकता नहीं रहती। जो स्वभावभाव है, उसको पराश्रयता कैसे हो ? अचिंत्य स्वभाव में अपूर्णता कैसे हो ? साक्षात् परमेश्वर का रूप ही यह भगवान आत्मा है। परमेश्वर में और प्रत्येक के भगवान आत्मा में कोई अंतर नहीं है। यह जीव जबतक अपने आत्मा को दृष्टि में नहीं लेता, तबतक स्वसंवेदन प्रमाणसिद्ध नहीं हो सकता। स्वयं के स्वभाव की महिमा चूककर परद्रव्य में या परभाव में जरा भी माहात्म्य आता है तो माहात्म्यवाला निज आत्मा हाथ में नहीं आयेगा। जो पर्याय द्रव्य को दृष्टि में लेती है, उस पर्याय की महिमा का पार नहीं है, तो द्रव्य की महिमा की क्या बात करें ? कहते हैं कि जीव को जबतक महिमा ख्याल में नहीं आती, तबतक वीर्य स्वसंवेदन की ओर

नहीं बड़ता।

मैं ही ज्ञेय और मैं ही ज्ञाता अर्थात् कि मैं ही जाननेयोग्य हूँ और मैं ही जाननेवाला हूँ – ऐसे विकल्प रहित होकर जो स्वसंवेदन करता है, वह प्रमाण है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार में कहा है कि 'जदि दायेज्ज पमाणं' जो मैं दिखाता हूँ, उसे प्रमाण करना। यहाँ जो कहा है, वह स्वसंवेदन की बात है। आत्मा के स्वरूप को जैसा मैं दर्शाता हूँ, वैसा तू अनुभव करके प्रमाण कर। तुम्हारे अंतर के प्रमाण के लिए तुझे अन्य किसी की आवश्यकता नहीं है।

आकाश का क्षेत्र है ...है ...है ... अनन्त क्षेत्र है, उसका अंत कभी नहीं आता। वैसे ही काल...है ...है ...है, उसका भी कभी अंत नहीं आता, तो उसको जाननेवाले ज्ञान में भी क्षेत्र का या काल का कभी अंत नहीं जाना जाता। 'है' ही जाना जाता है। आत्मा में स्वयं के ज्ञान का भाव, आनन्द का भाव, स्वच्छता का भाव, शुद्धता का भाव, शांति-चारित्र का भाव, वीर्य का भाव आदि प्रत्येक गुणों का भाव अमाप है।

उसको भी आत्मा स्वयं स्वयं को ज्ञेय बनाकर ज्ञायकपने एकसमय में जान सकता है। स्वयं के प्रमाणज्ञान में स्वयं के असीम भावों का ज्ञान हो जाता है। सभी प्रमाणों में यह स्वसंवेदन प्रमाण ही मुख्य है।

अरे प्रभु ! तुम्हारा स्वरूप तुम्हारे ज्ञान में न आवे और धर्म हो जाये – ऐसा कैसे हो सकता है ? स्वयं से ही स्वयं का प्रमाण होता है – ऐसा जीव का स्वरूप है। उससे कम, अधिक या विपरीत स्वरूप माने तो यह तत्त्व से ही विपरीत है।

अतीन्द्रिय आनन्द से भगवान आत्मा शोभित है। लोकालोक को जानना तो इसका ही स्वभाव है। लोकालोक को आत्मा जाननेवाला है; परन्तु आत्मा का क्षेत्र शरीर प्रमाण है – ऐसा आत्मा का स्वरूप अनुभव में – वेदन में आता है। **(क्रमशः)**

द्वादशांग का सार

समस्त द्वादशांग का सार वास्तव में तो एक आत्मा ही है। एक आत्मा को समझाने के लिये ही तो समस्त शास्त्रों की रचना हुई है; क्योंकि एक इस भगवान आत्मा के ज्ञान बिना ही यह आत्मा अनादिकाल से संसार में भटक रहा है, अनन्त दुःख उठा रहा है। **– गागर में सागर, पृष्ठ – 44**

णमिऊण जिणं वीरं

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की प्रथम गाथा पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलतः इसप्रकार है –

णमिऊण जिणं वीरं अणंतवरणाणदंसणसहावं।
वोच्छामि णियमसारं केवलिसुदकेवली भणिदं ॥

अनंत और उत्कृष्ट ज्ञान-दर्शन जिसका स्वभाव है – ऐसे केवलज्ञानी और केवलदर्शी जिनवीर को नमन करके मैं केवली तथा श्रुतकेवलियों का कहा हुआ नियमसार कहूँगा।

(गतांक से आगे .....)

छिद्र का अर्थ है पर्याय। छहों पदार्थ द्रव्य-गुण-पर्याय वाले हैं। सर्वज्ञ भगवान जगत के समस्त पदार्थों के ज्ञाता-दृष्टा हैं; किन्तु उनमें फेरफार करने में कोई समर्थ नहीं है। उसी भाँति समस्त आत्माओं का स्वभाव जगत को जानने-देखने का है; किन्तु उनमें किंचित् भी उलट-फेर करने की शक्ति उनमें नहीं हैं।

किसी जीव को मोक्ष प्राप्त करवा दें – ऐसी शक्ति भगवान में भी नहीं है। वे तो जैसा होता है, वैसा जानते हैं। यह जीव इसी भव से मुक्त होगा अथवा एक-दो भव बाद – ऐसा भगवान जानते हैं; परन्तु किसी का काल आगे-पीछे करके मोक्ष में पहुँचा दे – ऐसी बात नहीं हैं।

भगवान तो मात्र निमित्त हैं। निमित्त क्या करे ? गुरु उपदेश से समझे उसे निमित्त कहा जाये न ? स्वयं न समझे तो गुरु क्या करें ? स्वयं समझने के बाद चैतन्य की महिमा आने पर विकल्प की दशा में देव-गुरु के बहुमान और विनय का भाव आता है; परन्तु वह किसी पर के कारण नहीं आता। और निमित्त मेरा कल्याण कर देगा – ऐसी मान्यता भी नहीं है।

इसप्रकार प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है ह्न ऐसा केवलज्ञान से भगवान ने जाना है। ऐसे सर्वज्ञ को पहिचानकर जो उन्हें नमस्कार करे उसे अपने ज्ञानस्वभाव की प्रतीति होती है।

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं भगवान को नमस्कार करके कहता हूँ। क्या कहता हूँ ? नियमसार कहता हूँ।

नियमसार का अर्थ क्या ? नियम शब्द प्रथम तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का द्योतक है। आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र वही मोक्षमार्गरूप नियम है। जिसे मोक्ष में जाना हो, उसे ऐसा नियम लेना चाहिए।

लोग कहते हैं कि कुछ नियम बताओ। यहाँ नियम बताया कि शुद्धात्मा की श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र ही नियम है। इसमें भगवान के दर्शन करने का नियम आ जाता है। अपने चैतन्य भगवान के दर्शन करना वह सम्यग्दर्शन है। चैतन्यस्वभाव का सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र जिसने किया, उसने नियम लिया।

बाहर में भगवान के दर्शन करना तो शुभभाव है, वह वास्तव में मोक्षमार्ग का नियम नहीं है। अन्तर का नियम तो सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ही है। आत्मा का नियम लेना चाहिए कि मुझे अपने आत्मा को विकार वाला नहीं मानना, मुझे विकार न खपे और ज्ञानानन्द आत्मा खपे - ऐसा नियम वह मोक्षमार्ग है। नियम अर्थात् रत्नत्रय। आतम ज्ञानानन्दमय है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान करके उसमें रमणता करना ही नियम है। उस नियम से मुक्ति हुए बिना रहे नहीं।

नियम अर्थात् रत्नत्रय और नियम के साथ **सार** शब्द कहकर शुद्ध रत्नत्रय का स्वरूप कहा है। शुद्ध रत्नत्रय अर्थात् रागरहित निर्विकल्प रत्नत्रय। देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा, शास्त्र का ज्ञान और पंच महाव्रत का शुभभाव तो अशुद्ध रत्नत्रय है। शुद्ध चैतन्य की श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसमें रमणता होना शुद्ध रत्नत्रय है। शुद्ध रत्नत्रय कहो या निश्चय रत्नत्रय कहो, बीच में जो व्यवहार रत्नत्रय आता है, वह मलिन रागभाव है, अशुद्ध रत्नत्रय है।

शुभराग वास्तविक रत्नत्रय नहीं है; किन्तु उपचार से उसे रत्नत्रय कहते हैं। वह वास्तव में मोक्षमार्ग नहीं है। शुद्ध रत्नत्रय ऐसा कहकर यहाँ निश्चय रत्नत्रय बताया है, वही सच्चा मोक्षमार्ग है। शुभराग को व्यवहार रत्नत्रय कहा; परन्तु वह वास्तविक

रत्नत्रय नहीं और मोक्ष का भी कारण नहीं।

जिसप्रकार नर्क का नाम रत्नप्रभा है; उसीप्रकार व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र को रत्नत्रय कहा; परन्तु उसका साधन तो अभव्य भी करता है, वह कहीं वास्तविक रत्नत्रय नहीं। **नियमसार** अर्थात् शुद्ध रत्नत्रय; इसके अलावा शुभराग कहीं नियम का सार नहीं है। बीच में शुभराग का वर्णन आता है, वह ज्ञान करनेयोग्य है; किन्तु आदरणीय तो शुद्ध रत्नत्रय ही है। इसप्रकार नियमसार का अर्थ किया।

यह नियमसार कैसा है ? वह केवलियों और श्रुतकेवलियों द्वारा कहा हुआ है। ठेठ केवली भगवान के साथ संधि करके कहा कि केवली और श्रुतकेवली का कहा हुआ नियमसार मैं कहूँगा। केवली तो सकल प्रत्यक्षज्ञान के धारक हैं - ऐसे केवली ने इस शुद्ध रत्नत्रय को मोक्ष का मार्ग कहा है।

श्रुतकेवली भी सकल द्रव्यश्रुत के धारक हैं - ऐसे केवली और श्रुतकेवली ने जो कहा और स्वयं जिसका अनुभव किया, वही आचार्यदेव ने कहा है। पुनः यह नियमसार कैसा है ? सकल भव्यजनों के समूह को हितकारी है। यह नियमसार अर्थात् शुद्ध रत्नत्रय वह सभी पात्र जीवों को कल्याणकारी है। व्यवहार रत्नत्रय वास्तव में जीव को हितकारी नहीं। राग तो बन्ध का कारण है, वह हितकर कैसे होगा ?

यह नियमसार परमागम है। इसमें कथित शुद्ध रत्नत्रय का स्वरूप सीधा सर्वज्ञ की वाणी की परम्परा से प्रवर्त्तन करता चला आया है और भावलिंगी संतो ने परम्परा से लिखा है - ऐसा नियमसार मैं कहता हूँ। इसप्रकार विशिष्ट इष्टदेव का स्तवन करके श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव नियमसार कहने की प्रतिज्ञा करते हैं।

अब प्रथम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं :-

जयति जयति वीरः शुद्धभावास्तमारः।
त्रिभुवनजन पूज्यः पूर्णबोधैकराज्यः ।।
नत दिविजसमाजः प्रास्तजन्मद्रुबीजः।
समवसृतिनिवासः केवलीश्रीनिवासः ।।

शुद्धभाव द्वारा मार का (काम का) जिन्होंने नाश किया है, तीनभुवन के जनों को

जो पूज्य हैं, पूर्णज्ञान जिनका एक राज्य है, देवों का समाज जिन्हें नमन करता है, जन्मवृक्ष का वीज जिन्होंने नष्ट किया है, समवसरण में जिनका निवास है और केवलज्ञान-दर्शनरूपी लक्ष्मी जिनमें वास करती है, वे वीर जगत में जयवन्त वर्तते हैं। कैसे हैं सर्वज्ञ परमात्मा ? जिन्होंने आत्मा के शुद्धभाव से मार अर्थात् कामदेव का नाश किया है तथा वे त्रिभुवन द्वारा पूज्य हैं, अज्ञानी न मानें उनकी गिनती नहीं है। त्रिभुवन में जो महान इन्द्र व चक्रवर्ती आदि हैं, वे सभी उन्हें पूजते हैं।

हे नाथ ! आपको जो पहचाने उसके लिए ही आप पूज्य हो । जो आपको न पहचाने उसकी यहाँ गणना नहीं हैं। आप आचार्यदेव को पूज्य हैं; इसलिए सारे जगत को पूज्य हैं - ऐसा कहते हैं। फिर सर्वज्ञदेव को तीन लोक का राज्य है। उनके ज्ञानसाम्राज्य में तीन लोक का ज्ञान आ जाता है। पूर्णज्ञान का ज्ञेय कौन नहीं ? लोकालोक जानने में आता है। सर्वज्ञ को स्वर्ग के देवों का समूह नमस्कार करता है। मनुष्य तो नमस्कार करते ही हैं, इसमें क्या आश्चर्य ? अरे ! स्वर्ग के देव और इन्द्र भी भगवान के चरणों में नमन करते हैं।

उन्हें स्वर्ग की ऋद्धि प्राप्त हुई तो भी उसका आदर न करके भगवान का आदर करते हैं कि हे नाथ ! सच्ची केवलज्ञान की ऋद्धि तो आपने प्राप्त की है। यह पुण्य की ऋद्धि हमें आदरणीय नहीं - आदरणीय तो यह केवलज्ञान की ऋद्धि ही है। यह बाहर की स्वर्गादिक की ऋद्धि तो जड़ है, उसके स्वामी हम नहीं हैं। हम तो चेतन्य ऋद्धि के स्वामी हैं। जो ऋद्धि आपके प्रकट हुई है, वही हमारी भी हो - ऐसी भावना से हे नाथ ! देवगण आपको नमस्कार करते हैं। **(क्रमशः)**

आत्मा को सुख कहीं से प्राप्त नहीं करना है; क्योंकि वह सुख से ही बना है, सुखमय ही है, सुख ही है। जो स्वयं सुखस्वरूप हो उसे सुख क्या पाना ? सुख पाने की नहीं, भोगने की वस्तु है, अनुभव करने की चीज है। सुख के लिये तड़पना क्या ? सुख में तड़पन नहीं है, तड़पन में सुख का अभाव है, तड़पन स्वयं दुःख स्वरूप है, तड़पन का अभाव ही सुख है। इसीप्रकार सुख को क्या चाहना ? चाह स्वयं दुःखरूप है, चाह का अभाव ही सुख है। **- मैं कौन हूँ, पृष्ठ-5**

शक्तियों का संग्रहालय : भगवान आत्मा

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम समयसार नामक ग्रन्थाधिराज पर परमपूज्य आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने 'आत्मख्याति' नामक संस्कृत टीका लिखी है, उसके अन्त में परिशिष्ट के रूप में अनेकान्त का विस्तृत वर्णन करते हुये आत्मा की 47 शक्तियों का वर्णन किया है।

उन पर आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी ने समय-समय पर अतिमहत्त्वपूर्ण प्रवचन किये हैं, जो पाठकों के लाभार्थ क्रमशः प्रस्तुत हैं।

आत्मा को स्वभाव से तो मात्रा अपने स्वभाव के साथ ही स्व.स्वामित्व का संबंध है। यदि ऐसा न हो और पर के साथ भी संबंध हो तो पर के साथ का संबंध तोड़कर, स्वभाव में एकता करके शान्ति का अनुभव नहीं हो सकता। पर से पृथक् होकर अपने स्वरूप में लीन नहीं हो सकता; परन्तु पर से विभक्त और स्वरूप में एकत्व होकर आत्मा अपने में ही अपनी शान्ति का वेदन कर सकता है; क्योंकि उसे अपने साथ ही स्व.स्वामिपने का संबंध है। अपनी शान्ति के वेदन के लिए आत्मा को पर का संबंध नहीं करना पड़ता। नित्य स्वशक्ति के बल से, पर के संबंध बिना मात्र स्व में एकता द्वारा आत्मा अपनी शांति का अनुभव करता है।

स्व में एकत्व और पर से विभक्त ऐसा आत्मा का स्वभाव है; छह कारक और एक संबंध - इन सातों विभक्तियों द्वारा आचार्यदेव ने आत्मा को पर से विभक्त बतलाया है। संबंधशक्ति भी आत्मा का पर के साथ संबंध नहीं बतलाती; किन्तु अपने में ही स्व.स्वामी संबंध बतलाकर पर के साथ का संबंध तुड़वाती है; इसप्रकार पर से भिन्न आत्मा को बतलाती है। जिसने सब से विभक्त आत्मा को जाना, उसने समस्त विभक्तियों को जान लिया।

पर के संबंध को जानने पर आत्मा का यथार्थ स्वरूप नहीं जाना जाता। करोड़पति, लक्ष्मीपति, पृथ्वीपति, भूपति, स्त्री का पति - इत्यादि कहे जाते हैं; किन्तु वास्तव में आत्मा उस लक्ष्मी, पृथ्वी या स्त्री आदि का स्वामी नहीं है; इस शरीर का स्वामी भी आत्मा नहीं है; आत्मा तो ज्ञान.दर्शन.आनन्दरूप स्वभावों का ही स्वामी है और वही आत्मा का ''स्व'' है। स्व तो उसे कहा जाता है जो

सदैव साथ रहे, कभी अपने से पृथक् न हो। शरीर पृथक् हो जाता है, राग पृथक् हो जाता है; किन्तु ज्ञान.दर्शन.आनन्द आत्मा से पृथक् नहीं होते; इसलिए उनके साथ ही आत्मा को स्व.स्वामी संबंध है।

आत्मा तो अपने ज्ञायकस्वभाव का ही स्वामी है और वही उसका स्व है; उस ज्ञायकस्वभाव से आत्मा को जानने में ही उसकी शोभा है।

इन्द्रियादि पर के साथ का संबंध तोड़कर ऐसे आत्मा का अनुभव करे, तब उसे सर्वज्ञ भगवान की निश्चय स्तुति कही जाती है। सर्वज्ञ भगवान की निश्चय स्तुति का संबंध सर्वज्ञ के साथ नहीं है; किन्तु अपने आत्मस्वभाव के साथ ही है। जबतक सर्वज्ञ पर ही लक्ष रहे और अपने आत्मस्वभाव में लक्ष न करे, तबतक सर्वज्ञ भगवान की निश्चयस्तुति नहीं होती। अपना आत्मा ही सर्वज्ञशक्ति से परिपूर्ण है - ऐसा प्रतीति में लेकर स्वभाव के साथ जितनी एकता करे उतनी सर्वज्ञ भगवान की निश्चय स्तुति है और सर्वज्ञ की ओर बहुमान का भाव रहे वह व्यवहार स्तुति है।

जिसप्रकार पुत्रा का माता के साथ संबंध है, स्त्राी का पति के साथ संबंध है, उसीप्रकार धर्म का संबंध किसके साथ है ?

धर्म का संबंध किसी अन्य के साथ नहीं; किन्तु अपने धर्मी आत्मा के साथ ही धर्म का संबंध है।

प्रश्न - क्या भगवान के आत्मा के साथ भी इस आत्मा के धर्म का संबंध नहीं है ?

उत्तर - नहीं, आत्मा का संबंध धर्मी के रूप में मात्रा अपने ही आत्मा के साथ है, अन्य किसी के भी साथ नहीं है।

किसी भी परद्रव्य, परक्षेत्रा, परकाल और परभावों के साथ इस आत्मा के धर्म का संबंध नहीं है; वे कोई इस आत्मा का स्व नहीं हैं और न यह आत्मा उनका स्वामी है। इस आत्मा के धर्म का संबंध अपने स्वद्रव्य, स्वक्षेत्रा, स्वकाल, स्वभाव के साथ ही है। असंख्यप्रदेशी चैतन्यक्षेत्रा ही धर्म का क्षेत्रा है; स्वभाव में अभेद हुई स्व.परिणति ही धर्म का काल है और ज्ञान.दर्शन.आनन्द आदि अनन्त गुण ही आत्मा के धर्म का भाव है। ऐसे स्वद्रव्य,स्वक्षेत्रा, स्वकाल एवं स्वभाव के साथ ही आत्मा के धर्म का संबंध है और उसी के साथ आत्मा का स्व.स्वामीपना है।

प्रश्न - आत्मा का संबंध अन्य पदार्थों के साथ भले ही न हो; किन्तु कर्म के साथ निमित्त.नैमित्तिक संबंध तो है न ?

उत्तर - नहीं; अपने स्वभाव के साथ ही स्व.स्वामित्व संबंध जानकर, जो

उसी में एकतारूप से परिणत हुआ वह कर्म के साथ निमित्त.नैमित्तिक संबंध की ओर दृष्टि नहीं करता। जो कर्म के साथ निमित्त.नैमित्तिक संबंध की दृष्टि नहीं छोड़ता वह मिथ्यादृष्टि है। जो आत्मा को एकान्त से कर्म के साथ संबंधवाला ही जाने वह जीव आत्मा के शुद्धस्वरूप को नहीं जानता। जहाँ मात्रा अपने स्वभाव के साथ ही एकता करके मात्रा अपने स्वभाव के साथ ही स्व.स्वामी संबंधरूप से परिणमित होता है, वहाँ कर्म के साथ निमित्त.नैमित्तिक संबंध भी कहाँ रहा ? - इसप्रकार कर्म के साथ आत्मा का संबंध नहीं है। साधक को ज्यों.ज्यों अपने स्वभाव में एकता होती है, त्यों.त्यों कर्म का संबंध टूटता जाता है। इसप्रकार संबंधशक्ति स्वभाव के साथ संबंध कराके कर्म के साथ का संबंध तुड़वाती है।

इसप्रकार यहाँ 47 वीं संबंधशक्ति का वर्णन पूरा हुआ।

उपसंहार

हे भव्य ! कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण और संबंध - इन सात विभक्तियों के वर्णन द्वारा हमने तेरे आत्मा को पर से अत्यन्त विभक्त बतलाया; इसलिए अब तू अपने आत्मा को सबसे विभक्त तथा अपनी ज्ञानादि अनन्त शक्तियों के साथ संयुक्त जानकर प्रसन्न हो, स्वभाव का ही स्वामी बनकर पर के साथ संबंध के मोह को छोड़ !

- स्वभाव का कर्ता होकर पर के साथ कर्ताबुद्धि को छोड़ !
- स्वभाव के ही कर्मरूप होकर दूसरे कर्म की बुद्धि छोड़ !
- स्वभाव को ही साधन बनाकर अन्य साधन की आशा छोड़ !
- स्वभाव को सम्प्रदान बनाकर अपने को निर्मलभाव प्रदान कर !
- स्वभाव को ही अपादान बनाकर उसमें से निर्मलता ले !
- स्वभाव को ही अधिकरण बनाकर उसके साथ एकता का संबंध कर और पर के साथ का संबंध छोड़।

इसप्रकार समस्त पर से विभक्त और निजस्वभाव से संयुक्त ऐसे अपने आतमराम को जानकर उसके अनुभव से तू आनन्दित हो।

गणधरतुल्य श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव द्वारा श्री समयसार के परिशिष्ट में वर्णित ''अनेकान्तमूर्ति भगवान आत्मा की 47 शक्तियाँ'' पर अध्यात्ममूर्ति सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों द्वारा किया गया अद्भुत विवेचन समाप्त हुआ।

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : सम्यग्दृष्टि राग का कर्ता नहीं, सर्वज्ञ की तरह मात्र राग का ज्ञाता ही है; फिर भी सम्यग्दृष्टि की पर्याय में राग होता तो है न ?

उत्तर : राग सम्यग्दृष्टि की पर्याय ही नहीं। समयसार गाथा 12 में कहा है न, उससमय जाना हुआ प्रयोजनवान है। सर्वज्ञ एक समय में एकसाथ त्रिकाल को जानते हैं और नीचे साधकजीव उस-उस काल के राग को जानता है। जैसा-जैसा ज्ञान होता है; वैसा-वैसा राग निमित्त होता है। आगे-पीछे ज्ञान हो ह्न यह बात ही नहीं है - एक काल में ही है।

धर्मी जीव जानता है कि द्रव्यों में पर्यायें हो रही हैं, उन्हें सर्वज्ञ जान रहा है। उन्हें करे क्या ? तथा सम्यग्दर्शनादि में धर्म की पर्याय भी हो रही है, उसे करे क्या ? जो पर्याय स्वकाल में हो ही रही है, उसे करे क्या ? और उसे करने का विकल्प भी क्यों ? सर्वज्ञ तो प्रत्यक्ष देख रहा है और नीचे धर्मी जीव परोक्ष देख रहा है। मात्र प्रत्यक्ष-परोक्ष का ही अन्तर है। केवल दिशा बदलनी है, अन्य कुछ भी नहीं करना है।

जो पर्याय होनेवाली है, उसे करना क्या ? और जो नहीं होनेवाली है, उसे भी करना क्या ? ऐसा निश्चय करते ही कर्तृत्वबुद्धि छूटकर स्वभाव सन्मुखता हो जाती है। सर्वज्ञदेव त्रिकाली को देखने-जानने वाले हैं और मैं भी त्रिकाली का ज्ञाता-दृष्टा ही हूँ - इसप्रकार त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का निश्चय करना वही सम्यग्दर्शन है।

प्रश्न : सम्यग्दृष्टि को शुद्धात्मा का विचार उपयोग में चल रहा हो, उसे ही शुद्धोपयोग कहते हैं न ?

उत्तर : नहीं, शुद्धात्मा का विचार शुद्धोपयोग नहीं है, यह तो रागमिश्रित विचार है। शुद्धात्मा में एकाग्र होकर निर्विकल्प उपयोगरूप परिणाम हो, वह शुद्धोपयोग है। जिसमें ज्ञेय-ज्ञान-ज्ञाता का भेद छूटकर मात्र अभेदरूप चैतन्यपिण्ड ही अनुभव में आवे, वह शुद्धोपयोग है।

प्रश्न : ज्ञानी को विभाव परदेश लगता है, तो उसका खेद होता है कि ज्ञान होता है ?

उत्तर : खेद भी होता है और ज्ञान भी होता है।

प्रश्न : क्या शुद्धि और अशुद्धि एक पर्याय में साथ ही साथ है ?

उत्तर : हाँ ! साधक को शुद्धि और अशुद्धि एक पर्याय में साथ होने पर भी अशुद्धता का जो ज्ञान होता है, वह अपना है, अशुद्धता अपनी नहीं।

प्रश्न : सम्यग्दृष्टि को गृहस्थाश्रम में रहकर राजपाट करते हुए भी समभाव कैसे रहता होगा ?

उत्तर : त्रिकाली जीवतत्त्व की दृष्टि होने से ज्ञानी को पर्यायदृष्टि नहीं है अर्थात् वह पर्याय जितना ही जीव को नहीं मानता, इसलिए उसे पर्यायबुद्धि का राग-द्वेष नहीं होता। स्वभावदृष्टि होने के कारण वह सिद्धपर्याय या निगोद पर्याय में समभाव ही रखता है। कदाचित् अल्प राग-द्वेष होने पर भी स्वभाव की एकता नहीं छूटने से वास्तव में उसे राग-द्वेष होता ही नहीं, उसे तो स्वभाव की एकता ही वर्तती है। भाई ! स्वभावबुद्धि का हकार और पर्यायबुद्धि का नकार - यही स्वभाव है। आत्मा वर्तमानभाव जितना नहीं, अपितु त्रिकाल अखण्ड ज्ञानमूर्ति है - ऐसी श्रद्धा ही द्रव्यबुद्धि का स्वीकार है और पर्यायबुद्धि का अस्वीकार है। राजपाट में रहने पर भी ज्ञानी के स्वभावदृष्टि की अधिकता के कारण समभाव ही वर्तता है।

प्रश्न : यदि परपदार्थ को ज्ञानी अपना नहीं मानते तो मेरी पुस्तक, मेरी वस्तु - ऐसा क्यों बोलते हैं ? यह तो कपट है।

उत्तर : भाई ! भाषा में ऐसा ही बोला जाता है; तथापि अंतर में पर को अपना नहीं मानते है, यह कपट नहीं है। बोलने की क्रिया ही आत्मा की नहीं, वह तो जड़ है, उस समय ज्ञानी का अभिप्राय क्या है, वह समझना चाहिए।

प्रश्न : भूतकाल के दु:खों का स्मरण किस काम का ?

उत्तर : वैसे दु:ख पुन: न आवें - इसलिए उन्हें याद करके ज्ञानी अपने हृदय में वैराग्य करता है। मुनिराज भी भूतकाल के दु:खों को याद करके कहते हैं कि मैं भूतकाल में दु:खों को याद करता हूँ, तब कलेजे में घाव लग जाता है। देखो ! सम्यग्दृष्टि मुनि है, आनन्द का प्रचुर वेदन है, तथापि भूतकाल के दु:खों को याद करते हैं। किसलिए ? कि वैसे दु:ख फिर से प्राप्त न हों; इसलिए उन्हें याद कर वैराग्य बढ़ाते हैं।

विद्वत्परिषद् के नए अध्यक्ष : डॉ. भारिल्ल

जयपुर। 15 अगस्त, 03 को श्री अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद् की कार्य समिति की बैठक वयोवृद्ध विद्वान पं. अनूपचन्दजी न्यायतीर्थ, जयपुर की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। बैठक में पूर्व अध्यक्ष पं. प्रकाशचन्दजी 'हितैषी' के निधन पर शोक व्यक्त किया गया तथा उनके निधन से रिक्त हुए अध्यक्ष पद पर सर्व सम्मति से डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का चयन किया गया। बैठक में डॉ. सुदर्शनलाल जैनह्नवाराणसी को कार्याध्यक्ष, पं. विमलकुमारजी सोंरयाह्नटीकमगढ़ को उपाध्यक्ष तथा विशिष्ट आमंत्रित सदस्य के रूप में सर्वश्री डॉ. शशिकान्त जैनह्नलखनऊ, वरिष्ठ पत्रकार श्री मिलापचन्द डण्डियाह्नजयपुर तथा पं. मनोहर मारवडकरह्ननागपुर को मनोनीत किया गया। कार्यकारिणी में नए सदस्य के रूप में डॉ. ऋषभ फौजदार वैशाली को सम्मिलित किया गया।

वैराग्य समाचार

1. मध्यप्रदेश के सुप्रसिद्ध समाजसेवी, उद्योगपति सर्वश्री श्रीमंत सेठ डालचन्दजी जैन (पूर्व सांसद) के अनुज श्रीमंत सेठ शिखरचन्दजी जैन का दिनांक 13 अगस्त, 2003 को धार्मिक परिणामोंपूर्वक निधन हो गया है।

शिखरचन्दजी जैन अत्यन्त दयालु, परोपकारी, धार्मिक प्रवृत्ति के साथ-साथ असहाय व्यक्तियों को सहायता प्रदान करनेवाले थे। उनके निधन से निश्चित ही अपूरणीय क्षति हुई है।

आपकी स्मृति में जैनपथप्रदर्शक समिति एवं वीतराग-विज्ञान को कुल 1002/- रुपये प्राप्त हुये हैं; एतदर्थ धन्यवाद !

2. इन्दौर मुमुक्षु मण्डल के सक्रिय कार्यकर्ता, परमागम श्रावक ट्रस्ट सोनागिर के महामंत्री, अध्यात्मप्रेमी श्री मांगीलालजी पहाड़िया का पर्यूषण पर्व के मध्य सोनागिर में अचानक देहावसान हो गया है। आप बहुत समय से अस्वस्थ चल रहे थे। आप बहुत ही धार्मिक एवं सरलस्वभावी व्यक्ति थे। पण्डित टोडरमल स्मारक द्वारा संचालित समस्त गतिविधियों में आप सदैव तन-मन-धन से समर्पित भाव से भाग लेते रहे हैं। इन्दौर प्रशिक्षण-शिविर एवं पंचकल्याणक में आपकी अहम भूमिका रही। आपके स्वर्गवास से मुमुक्षु समाज को अपूरणीय क्षति हुई है।

दिवंगत आत्मायें शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हों - यही कामना है।

पूरे देश में पर्यूषण पर्व धूम-धाम से मनाया गया

1. **जयपुर (टोडरमल स्मारक भवन) :** यहाँ पर्व के अवसर पर दिनांक 31 अगस्त से 9 सितम्बर तक प्रतिदिन टोडरमल दिग. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के ही प्राचार्य पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल के सारगर्भित प्रवचनों का लाभ सभी को मिला।

प्रतिदिन प्रात: पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन के पश्चात् विदुषी ब्र. कल्पना बेन सागर द्वारा प्रवचनसार की 80वीं गाथा और दोपहर में तत्त्वार्थसूत्र पर मार्मिक प्रवचन हुए । साथ ही पण्डित प्रवीणकुमारजी शास्त्री द्वारा छहढाला की कक्षा चलाई गई। सायंकाल जिनेन्द्र भक्ति एवं महाविद्यालय के छात्रों द्वारा प्रवचन हुये। रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर बापूनगर महिला मण्डल की ओर से दशलक्षण विधान का आयोजन किया गया।

विधि-विधान के कार्य पण्डित चिन्मयजी शास्त्री पिड़ावा एवं उपाध्याय वरिष्ठ के विद्यार्थियों द्वारा सम्पन्न हुये। समस्त कार्यक्रम पण्डित प्रवीणकुमारजी शास्त्री के निर्देशन में सम्पन्न हुये।

ज्ञातव्य है कि अन्तिम दिन प्रात: डॉ. भारिल्ल का उत्तम ब्रह्मचर्य विषय पर मार्मिक व्याख्यान हुआ; जिसमें **महामहिम श्री निर्मलचन्दजी जैन, राज्यपाल, राजस्थान** भी पधारे। इसके पूर्व उन्होंने सीमन्धर जिनालय में पूजन की। तथा डॉ. भारिल्ल के प्रवचनोपरान्त उन्होंने अपने करकमलों से प्रश्न मंच के पुरस्कार प्रदान किये।

2. **जयपुर (आदर्शनगर) :** यहाँ समाज के विशेष आग्रह पर अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रात: मार्मिक एवं सारगर्भित प्रवचनों का लाभ उपस्थित समाज ने लिया। प्रवचनोपरान्त प्रतिदिन प्रश्न-मंच हुआ। आपके हृदयस्पर्शी प्रवचनों के पूर्व पण्डित राजेशकुमारजी शास्त्री, शाहगढ के मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रवचन हुये तथा रात्रि में पण्डित प्रवीणकुमारजी शास्त्री रायपुर के सोलह कारण भावनाओं पर प्रवचन हुये।

ज्ञातव्य है कि मुलतान दिग. जैन समाज द्वारा पर्व के मध्य रविवार, दिनांक 7 सितम्बर को दोपहर में डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की अध्यक्षता में **राज्यपाल श्री निर्मलचन्दजी जैन** का स्वागत समारोह रखा गया।

3. **जयपुर (राजस्थान जैन सभा) :** मनिहारों के रास्ते स्थित श्री दि. जैन बड़े दीवानजी के मंदिर में राजस्थान जैनसभा के तत्त्वावधान में रात्रि में प्रतिदिन दशलक्षणधर्म पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के मार्मिक प्रवचन हुए। प्रवचन के पश्चात् प्रतिदिन प्रश्नमंच भी किया गया। इस अवसर पर डॉ. भारिल्ल द्वारा लिखित साहित्य एवं प्रवचन के अनेक कैसेट्स बिके। साथ ही वीतराग-विज्ञान (मासिक) एवं जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक) के अनेक सदस्य भी बनें।

ज्ञातव्य है कि दिगम्बर पर्यूषण के पूर्व श्वेताम्बर पर्यूषण के अवसर पर अध्यात्म स्टडी सर्किल मुम्बई में डॉ. भारिल्ल के विभिन्न विषयों पर मार्मिक व्याख्यान हुए, जिसका अनेक लोगों ने लाभ लिया।

4. **बड़ौत (उ.प्र.):** यहाँ मुमुक्षु मण्डल बड़ौत के विशेष आग्रह पर पर्यूषण के चार दिन पूर्व से ही ब्र. यशपालजी जैन जयपुर द्वारा गुणस्थान विवेचन की सामान्य कक्षा ली गई। तथा पर्व के दिनों में प्रात: जिनधर्म प्रवेशिका पर, दोपहर में कर्मो की दश अवस्थाओं पर तथा रात्रि में दशधर्म एवं छहढाला पर प्रवचन हुये।

ज्ञातव्य है कि रात्रि का प्रथम प्रवचन पण्डित सुरेश काले शास्त्री का होता था। उनके ही द्वारा पूजन-विधान एवं सांस्कृतिक कराये गये।

5. **टीकमगढ़ (म.प्र.) :** यहाँ बाल ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री, सनावद के प्रात: समयसार एवं रात्रि में दशलक्षण धर्म पर मार्मिक प्रवचन हुये। दोपहर में पण्डित सुनीलकुमारजी बेलोकर द्वारा बारसाणुवेक्खा पर कक्षा ली गई। प्रात: पंचपरमेष्ठी विधान एवं रत्नत्रय मण्डल विधान का आयोजन ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री के निर्देशन में पं. सुनीलजी द्वारा कराया गया।

इस अवसर पर आगामी पंचकल्याणक को ध्यान में रखते हुये अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम कराये गये। दिनांक 10 सितम्बर को 'शिखर-शिलान्यास' समारोह सम्पन्न हुआ।

6. **पंढरपुर (महा.) :** यहाँ नवनिर्मित मंदिर में पर्यूषण पर्व हर्षोल्लास से मनाया गया। इस प्रसंग पर ब्र. धन्यकुमारजी बेलोकर गजपंथा के प्रात: मोक्षमार्गप्रकाशक, दोपहर में छहढाला एवं रात्रि में दशधर्मों पर सारगर्भित प्रवचन हुये। पण्डित प्रशांतजी शास्त्री द्वारा क्रमबद्धपर्याय पर कक्षा ली गई तथा रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रम कराये गये।

7. **जबलपुर (म.प्र.) :** यहाँ पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील के प्रात: नियमसार के शुद्धभाव अधिकार पर, दोपहर में मोक्षमार्गप्रकाशक के सम्यक्त्व सन्मुख मिथ्यादृष्टि विषय पर एवं रात्रि में दशलक्षण धर्मों पर मार्मिक प्रवचन हुये। अन्तिम दिन आपका एक प्रवचन दिगम्बर जैन मन्दिर रांझी में भी हुआ।

8. **अहमदाबाद (गुज.) :** यहाँ आशीष नगर में टोडरमल स्मारक ट्रस्ट से बेनश्री राजकुमारजी, जयपुर पधारीं। आपके द्वारा प्रात: समयसार के संवर अधिकार पर तथा रात्रि में दशलक्षण धर्मों पर सारगर्भित प्रवचन हुये। दोपहर में तत्त्वार्थसूत्र के आधार पर विग्रहगति एवं कालचक्र पर कक्षा तथा सायंकाल बालकक्षा ली गई।

9. **भोपाल (म.प्र.) :** यहाँ चौक धर्मशाला में पण्डित संजीवकुमारजी गोधा, जयपुर के प्रातः समयसार के सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार पर मार्मिक प्रवचन हुए। तत्पश्चात् आपके द्वारा ही प्रतिदिन तत्त्वार्थसूत्र के प्रत्येक अध्याय का अर्थ किया गया। दोपहर में आपके द्वारा तीन लोक के अकृत्रिम जिन चैत्यालयों तथा पंच परावर्तन की विस्तारपूर्वक चर्चा हुई। रात्रि में दशलक्षण धर्म पर सारगर्भित प्रवचन हुए। प्रतिदिन पण्डित गणतंत्रजी शास्त्री, खरगापुर द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम कराये गये। समस्त कार्यक्रमों से समाज में महती धर्म प्रभावना हुई। **– देवेन्द्र बड़कुल**

10. **नागपुर (महा.) :** यहाँ पण्डित अरहंतप्रकाशजी झांझरी, उज्जैन के प्रात: समयसार कलश पर एवं रात्रि में रत्नकरण्डश्रावकाचार के आधार से दशलक्षण धर्मों पर सारगर्भित प्रवचन हुये। दोपहर में पण्डित प्रयंकजी शास्त्री रहली द्वारा तीनलोक मण्डल विधान कराया गया। रात्रि में प्रवचनोपरान्त सांस्कृतिक कार्यक्रम कराये गये। कार्यक्रमों में श्रीमती अभिधारा झांझरी, डॉ. शकुन जैन, कु. स्वाती जैन एवं पण्डित स्वप्निल शास्त्री का विशेष योगदान रहा। **– अशोककुमार जैन**

क्षमावाणी समारोह में महामहिम राज्यपाल

जयपुर : श्री टोडरमल स्मारक भवन में दिगम्बर जैन समाज बापूनगर सम्भाग द्वारा आयोजित सामूहिक क्षमापना पर्व समारोह में **राजस्थान के राज्यपाल महामहिम श्री निर्मलचन्दजी जैन** ने मुख्य-अतिथि के रूप में सभा को सम्बोधित करते हुये कहा कि क्षमा मन से मांगनी चाहिये, इसलिये मन में करुणा जरूरी है। मानवता करुणा से आती है। हमें व्यवहार में आध्यात्मिकता लाकर प्रपंचों से ऊपर उठने का प्रयास करना चाहिये।

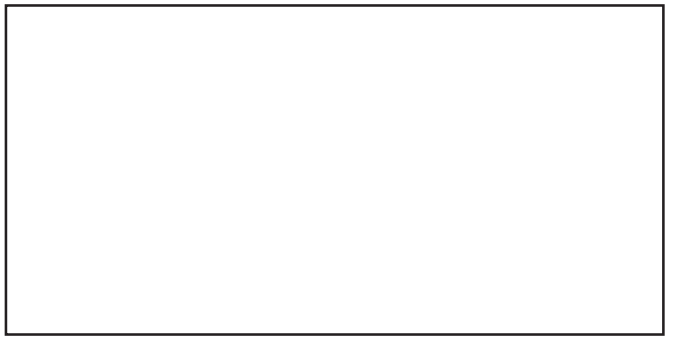

बायें से महेन्द्रकुमारजी पाटनी, विवेकजी काला, महामहिम राज्यपाल
श्री निर्मलचन्दजी जैन एवं डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल

समारोह के अध्यक्ष डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का इस अवसर पर क्षमावाणी पर मार्मिक प्रवचन हुआ, जिसका लाभ भी सभी को मिला।

इस अवसर पर बापूनगर दिग. जैन समाज के अध्यक्ष श्री महेन्द्रकुमारजी पाटनी ने बापूनगर सम्भाग की गतिविधियों का परिचय दिया। कार्यक्रम के अन्तर्गत राज्यपाल के कर-कमलों से दिगम्बर जैन समाज बापूनगर सम्भाग परिचय पुस्तिका का विमोचन एवं पर्व में 3 से 10 उपवास करनेवाले साधर्मियों का सम्मान किया गया।

प्रसिद्ध रत्नव्यवसायी श्री विवेक काला ने भी सभा को संबोधित किया। इस अवसर पर भारत जैन महामण्डल के अध्यक्ष श्री सम्पतकुमारजी गधइया भी मंचासीन थे।

पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट, जयपुर द्वारा आयोजित

ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में

छठवाँ आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर

(गुरुवार, 2 अक्टूबर से शनिवार, 11 अक्टूबर, 2003 तक)

आपको सूचित करते हुये हर्ष हो रहा है कि श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर में गुरुवार, दिनांक 2 अक्टूबर, 2003 से शनिवार, दिनांक 11 अक्टूबर, 2003 तक आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर का आयोजन अनेक विशिष्ट मांगलिक कार्यक्रमों सहित किया जा रहा है।

शिविर में देश के ख्यातिप्राप्त अनेक विशिष्ट विद्वानों का प्रवचन, कक्षाओं एवं तत्त्वचर्चा के माध्यम से धर्मलाभ मिलेगा। साथ ही व्याख्यानमाला के माध्यम से अन्य अनेक विद्वानों द्वारा विविध विषयों के व्याख्यानों का भी लाभ प्राप्त होगा।

सम्पूर्ण कार्यक्रम ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री सनावद एवं पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा इन्दौर के कुशल निर्देशन में सम्पन्न होंगे।

सभी साधर्मी बन्धुओं को ऐसे मांगलिक अवसर पर सपरिवार एवं इष्ट मित्रों सहित पधारकर धर्मलाभ लेने हेतु हमारा वात्सल्यपूर्ण हार्दिक आमंत्रण है।

पण्डित प्रकाश हितैषी शास्त्री को श्रद्धांजलि

श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् की कार्यकारिणी समिति की बैठक शुक्रवार, दिनांक 15 अगस्त, 2003 को मंगलधाम, बापूनगर, जयपुर में वयोवृद्ध विद्वान् पं. श्री अनूपचन्द न्यायतीर्थ, जयपुर की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। डॉ. प्रेमचन्द रांवका, जयपुर द्वारा मंगलाचरणोपरान्त डॉ. सत्यप्रकाश जैन महामंत्री ने विद्वत्परिषद् के सन्माननीय अध्यक्ष स्व. पं. श्री प्रकाश हितैषी शास्त्री के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर प्रकाश डालते हुए दि. 7 जून, 2003 को उनके शान्ति एवं समाधिपूर्वक देहत्याग पर शोक संवेदना एवं श्रद्धांजलि अर्पित की। तदुपरान्त सभी सदस्यों ने नौ बार णमोकार मंत्र का स्मरण कर दिवंगत आत्मा की सद्गति एवं निःश्रेयस पद की प्राप्ति हेतु कामना की।